फ़िल्म समीक्षा

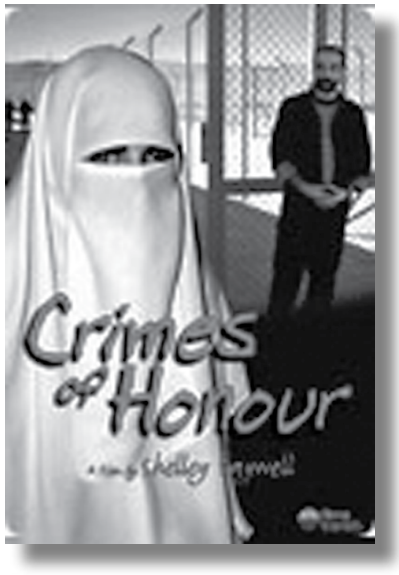

क्राइम्ज़ ऑफ़ ऑनर (जॉर्डन/वेस्ट बैंक)

भाषा **अंग्रेज़ी**
अवधि **मिनट**
निर्देशन **शैली सायल**
वर्ष **1999**

पुरुष रिश्तेदारों द्वारा सम्मान के नाम पर किए जाने वाले औरतों के कत्ल इतने व्यापक हैं कि इस फ़िल्म के अनुसार केवल जॉर्डन में ही हर दो हफ़्तों में एक औरत की हत्या की जाती है। ड्रामा-वृत्तचित्र *क्राइम्ज़ ऑफ ऑनर* इस आपराधिकरण को, जो संस्कृति के नाम पर जायज़ ठहराया जाता है और जिस पर विद्वान व समाजशास्त्री टिप्पणी करने से कतराते हैं, साफ़गोई से प्रस्तुत करती है।

पीड़ितों, उनके पड़ोसियों व हत्यारों के साथ किए साक्षात्कार में यह साफ़ निकलकर आता है कि जब औरत अपने परिवार का विरोध करती है, उनकी इजाज़त के बगैर घर छोड़ती है, अपनी 'इज़्ज़त' गवां देती है या अपना 'बलात्कार' होने देती है तो इस गुनाह की भरपाई मौत की सज़ा से ही की जा सकती है। इस 'मान' के काम को अंजाम देने की ज़िम्मेदारी अधिकतर भाई पर होती है। जले, कटे, गोलियों से छलनी, लहूलुहान, सर कलम किए शरीरों की तस्वीरें हमें यह सोचने को विवश करती हैं कि हिंसा का ये कैसा घिनौना रूप परिवारों की पृष्ठभूमि में पलता है जो अपनों के साथ ऐसा पाशविक सुलूक गवारा कर देता है?

इस प्रश्न का एक उत्तर जो फ़िल्म में दिखाई पड़ता है वह है—बलात्कार व पारिवारिक व्यभिचार। कुछ हत्याएं चारदीवारी के अंदर होने वाले इन अपराधों पर पर्दा डालने के लिए परिवारों द्वारा अपनाये रास्ते हैं। यह साफ़ तौर पर समझाया गया है कि अधिकांश पड़ोसियों व परिवार के सदस्यों का मानना है कि बलात्कार की ज़िम्मेदारी औरत की होती है। एक दृश्य में एक युवा लड़की जो इस बात वाकिफ़ है कि दूसरे कमरे में रखे उसके बहन के सर कटे शरीर पर बलात्कार उसके भाई ने ही किया था, हत्या को सही ठहराते हुए कहती है- "यह अगर वह नहीं चाहती तो ये बलात्कार नहीं हो सकता था।"

यानी इन हत्याओं को बंद करने के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट इस जुर्म को मिलने वाली सामाजिक सहमति और वैधता है। जॉर्डन की न्यायिक प्रणाली में यह रज़ामंदी संस्थागत है और दोषी अभियुक्तों को छः माह या ज़्यादा से ज़्यादा साल भर की कैद की सज़ा दी जाती है। दूसरी ओर ऐसे समाज में औरत की सुरक्षा शायद केवल जेल की सलाखों के पीछे ही हो सकती है।

एक बदसूरत मुद्दे को गहराई और संवेदना के साथ पेश करने के लिए इस फ़िल्म की प्रशंसा की जानी चाहिए। फ़िल्म इस सच को भी स्थापित करने में सफल रही है कि इन अपराधों के पीछे इस्लामी विचारधारा या धार्मिक सहमति की कोई गुंजाइश नहीं है।

जेरुसलम में फ़िल्माया गया फ़िल्म का एक हिस्सा मानव अधिकार कार्यकर्त्ताओं द्वारा ईसाई औरतों को हत्याओं से बचाने पर केंद्रित है। कार्यकर्त्ताओं द्वारा अपने समाज की कमज़ोरियों को उजागर करने की यह कोशिश हांलाकि एक प्रगतिशील सोच का उदाहरण है परन्तु सम्मान के नाम पर की जाने वाली हत्याओं को सिर्फ़ निम्न वर्ग की अज्ञानता और पिछड़े मूल्यों तक सीमित रखना समस्या का आधा-अधूरा पक्ष प्रस्तुत करता है। अमीर, शिक्षित वर्ग में यह समस्या नहीं है ऐसा सोचना व मानना दोनों न्यायसंगत नहीं है। फ़िल्म का यह विरोधाभास वर्जनाओं के सूत्रधारों को एक "दूसरी" श्रेणी में खड़ा कर देता है जो इस आपराधीकरण को पूरी तरह सामने लाने में रुकावट पैदा करता है।

जुही जैन